भारतीय समाजशास्त्र समीक्षा
ISSN No. 2349–1396
1(2), जुलाई–दिसंबर 2014, पृ.सं. 36–48
© भारतीय समाजशास्त्र परिषद

भारतीय समाजशास्त्र का आन्तरीकरण एवं स्थानीयकरण

सुकान्त कुमार चौधरी

हर विषय के शोध कार्य एवं सिद्धांतों में पश्चिमी प्रभाव रहा है और ये समाजशास्त्र के साथ भी हुआ है। प्रत्यक्षवाद, उसके आलोचनात्मक सिद्धांत, मार्क्सवाद, संरचनावाद आदि सिद्धांतों के द्वारा भारत में समाजशास्त्री हमेशा से प्रभावित रहे हैं। इस दृष्टिकोण से समाजशास्त्र के आंतरीकरण एवं स्थानीयकरण का मुद्दा महत्वपूर्ण हो जाता है। अटल (2003) ने कहा है कि अधिकतर देशों में समाज विज्ञान के स्थानीयकरण हेतु कई महत्वपूर्ण कदम उठाये गये तथा उपनिवेशकाल के पश्चात सामाजिक विज्ञान की संरचना के पुनर्परीक्षण की आवश्यकता का अनुभव किया गया। इस सिलसिले में जो सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा उभरकर आया वह था संस्कृति की विविधता और इस आधार पर पश्चिम के समाजशास्त्र का विलौकीकरण की बात की गयी जिसके आधार पर स्थानीयकरण सम्भव हो सकता है। स्थानीयकरण का अर्थ है पश्चिम के समाज विज्ञान की पद्वति को छोड़ व अपने समाज की संस्कृति को आधार मानकर एक नया समाजशास्त्रीय पद्वतिशास्त्र विकसित करना। स्थानीयकरण के तर्क तो आते हैं किन्तु समान्यतः इसका क्रियान्वयन किसी भी देश (तृतीय विश्व) में अपने सम्पूर्ण अर्थों में नहीं हुआ। समाजविज्ञान के विश्लेषणकर्ताओं ने ऐसा कोई प्रमाण नहीं दिया कि वे पश्चिमी प्रभाव से पूर्ण रूप से मुक्त हैं और न ही उन्होंने अभी तक इसे नकारा भी है।

योगेश अटल (2003) ने स्पष्ट किया कि समाज विज्ञान के आन्तरीकरण (इन्डीजेनाइजेशन) हेतु कुछ पूर्व शर्तों की आवश्यकता हैं। वस्तुतः ये शर्तें व्यक्तिगत स्तर, संस्थागत स्तर, राष्ट्रीय स्तर, पेशेवर स्तर एवं आंचलिक स्तर पर लागू होनी चाहिए। उन्होंने स्पष्ट किया कि समाजशास्त्र के साहित्य का पुनर्मूल्यांकन होना चाहिए तभी विकासशील देशों के समाजशास्त्र का आन्तरीकरण सम्भव हो सकता है।

Scanned with CamScanner

हैं और इस प्रकार वे अपनी परम्परा व संस्कृति को मजबूत करते हुए उपनिवेशकारी राष्ट्रों से पृथक एक सन्दर्भ समूह चाहते हैं।

अटल ने इसे एकल कोणीय प्रारूप (single aperture model) कहा जिसके आधार पर उपनिवेशों ने उपनिवेशकारी देश को सन्दर्भ समूह माना व उसके प्रभाव से ही उनकी भाषा, शिक्षा, जीवनशैली आदि प्रभावित हुई है। कालान्तर में बहुकोणीय प्रारूप (multiple aperture model) अपनाने की बात आयी जिसके आधार पर स्पष्ट किया गया कि स्वतन्त्र देश विभिन्न देशों से विचारधाराएँ एवं प्रेरणाएँ प्राप्त करते हैं लेकिन यह मात्र उनकी आकांक्षाएँ थीं जो सफल नहीं हो पायी क्योंकि वह धीरे–धीरे निर्भरशीलता के प्रारूप को जन्म देती गयीं। इससे एक नये प्रकार का शैक्षणिक उपनिवेशवाद उत्पन्न हुआ जिसका स्रोत अमेरिका व सोवियत संघ रहा। इस प्रकार राजनैतिक स्वतन्त्रता के बावजूद तीसरे विश्व के राज्यों व दाता राष्ट्रों (Donor Country) के मध्य सम्बन्ध पहले जैसे ही रहे क्योंकि तृतीय देशों के अधिकतर विद्वान वहीं से प्रशिक्षण प्राप्त करके आये व विषय के स्थानीयकरण की इच्छा के बावजूद वे उन राष्ट्रों (Donor) से प्रभावित रहे। उनके प्रारूप क्रम में भी दाता राष्ट्रों का प्रभाव रहा। इसी कारण उसे बंधुआ या कैदी मानसिकता कहा गया। इसी कारण आन्तरीकरणके विद्वानों ने इसकी आलोचना की।

1977 में IFSSO (International Federation of Social Science Organizations) ने समाजविज्ञानों के आन्तरीकरण के लिए आह्वान किया। वेनर ग्रेन प्रतिष्ठान ने 1978 में मानवशास्त्रीय विद्वानों के स्थानीयकरण के निमित्त एक संगोष्ठी आयोजित की। इसके आधार पर ही कनाडा में समाज विज्ञान का कनाडाईकरण हुआ, कोरिया में कोरियाईकरण (Korianization) किया गया।

अटल (2003) ने भारतीयकरण की चार विशेषताएं बताई–

1. आन्तरीकरण आत्म जागरुकता के लिए उद्घोष है व यह उधार ली गयी या आन्दोलित चेतना का खण्डन है। इसके तहत आन्तरिक दृष्टि अपनाने की कोशिश की गयी। इसके प्रवर्त्तकों की मंशा है कि अपने समाज का विश्लेषण कुछ स्थानीय समाजशास्त्रीय विचार धाराओं के आधार पर किया जाय तथा समाज वैज्ञानिक पश्चिमी वैचारिक विश्लेषण को त्याग दें।
2. आन्तरीकरण के आधार पर समाज विश्लेषण के बारे में कुछ वैकल्पिक विचारधारायें विकसित की जाती हैं एवं इससे समाज विज्ञान की संकीर्णताएँ कम की जाती है व इसके आधार पर पेशेवर तत्वों का विकास होता है।
3. आन्तरीकरण के आधार पर ऐतिहासिक व सांस्कृतिक विशिष्टताओं को ध्यान में रखा जाता है व राष्ट्रीय समस्याओं पर गतिशील विचारधारायें विकसित की जाती हैं।
4. आन्तरीकरण के आधार पर संकीर्ण लौकिकीकरण नहीं होना चाहिए। एक परिभाषा

Scanned with CamScanner

को बहुखण्डित नहीं करना चाहिए व इसके द्वारा मिथ्या का सार्वभौमीकरण भी नहीं होना चाहिए या मिथ्या राष्ट्रवादिता का दम्भ नहीं होना चाहिए।

भारत में समाजशास्त्र संदर्भीकरण

भारत में समाजशास्त्र का आज लगभग एक सौ साल पूरा होने जा रहा है। शुरूआत के तीन दशकों में समाजशास्त्रियों ने सिर्फ पश्चिमी सिद्धांतों एवं पद्धतियों का प्रयोग किया एवं उसके बाद ग्रामीण पद्धतियों के अध्ययन लोकप्रिय रहे, जैसे 1955 में तीन कृतियां – श्रीनिवास द्वारा सम्पादित 'इण्डियाज विलेजेज', मैकिम मेरियट द्वारा सम्पादित 'विलेज इण्डिया' एवं एस. सी. दुबे का 'इण्डियन विलेज'। इसके अलावा भी कई और अध्ययन आये पर इन सारे अध्ययनों में संरचना–प्रकार्यशास्त्रीय पद्धति का प्रयोग किया गया था क्योंकि उस समय लोकप्रिय मानवशास्त्री रेडक्लिफ ब्राउन से प्रेरित थे। हालांकि कई समाजशास्त्रियों ने ग्रन्थि उपागम का प्रयोग करते हुए संस्कृत साहित्य का अध्ययन करके उन अध्ययनों में कुछ हद तक भारतीयता लाने का प्रयास भी किया। ऊमन (1996) ने कहा कि समाजशास्त्र के शुरूआत के छः दशकों में समाज की व्यवस्था व उसमें होने वाले परिवर्तन और उनकी दिशाओं का अध्ययन किया गया, लेकिन उन्होंने उन अध्ययनों पर कई सवाल उठाये जैसे कि भारत में समाजशास्त्र की खोज के विश्लेषण की उपयुक्त इकाई, दत्त संकलन की तकनीकियाँ, भारत के प्रासंगिक सैद्धान्तिक परिपेक्ष्य, भारतीय सामाजिक वास्तविकता के इतिहास को समझने के लिए उपयुक्त महत्व, शैक्षणिक उपनिवेशवाद आदि। इसके अलावा ऊमन ने कहा कि भारत में पांच प्रमुख विचारधारायें पाई गई:

(क) परम्परावादी, जो भारतीय समाज को समग्रतावादी दृष्टिकोण से भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता के अद्वितियत्ता को महत्व देते हैं।

(ख) राष्ट्रवादी, जो बाह्य प्रभाव से दूर भारतीय इतिहास एवं परम्परा से दूर विश्लेषण पर महत्व देते हैं।

(ग) स्थानीयवादी, जो लागों की सामाजिक वास्तविकता का पुनर्निर्माण स्थानीय श्रेणी से करते हैं।

(ड) सर्वदेशीय, जो गैर ऐतिहासिक और सामान्य एवं वर्तमान दशाओं को महत्व देते हैं।

(च) अतिवादी, जो बाह्य प्रभाव का चयनात्मक खण्डन करते हैं।

ऊमन (1996) ने कहा कि भारत में समाजशास्त्र के सन्दर्भीकरण में कई विशेषताएँ पायी जाती है।

Scanned with CamScanner

अतीत एवं वर्तमान के भारतीय विद्याशास्त्र एवं समाजशास्त्र में परम्परा एवं परिवर्तन को अलग–अलग महत्व दिया जाता है। उन्होंने कहा कि डी. पी. मुखर्जी ने परम्परा को महत्व दिया जबकि ड्यूमों ने कहा कि भारत का समाजशास्त्र, भारतीय विद्याशास्त्र एवं समाजशास्त्र के समावेश में पाया जाता है। ऊमन ने अपनी प्रतिक्रिया में कहा जो भारतीय विद्याशास्त्र को महत्व देते है वे कहते हैं कि भारतीय सामाजिक वास्तविकता का अध्ययन का तरीका ग्रन्थों से संबंधित है, लेकिन यह सारे ग्रन्थ हिन्दू धार्मिक ग्रन्थ हैं और इससे हिन्दू समाजशास्त्र उत्पन्न होता है। ऊमन ने कहा कि भारत में धर्म वर्तमान स्रोतों के अनुसार होना चाहिए जैसे: (1) मूल निवासियों की सामाजिक श्रेणी जिसमें आदिवासी और दलित आते हैं (2) प्राचीन प्रवर्जन धर्म जिसका स्थानीयकरण हुआ है, जो प्रबुद्धशील धर्म बन गया है: हिन्दू धर्म, (3) वो धर्म जो हिन्दू धर्म के विरोध में उत्पन्न हुये: जैन, बुद्ध, सिक्ख और (4) वो धर्म जो उपनिवेशी विजय के द्वारा उत्पन्न हुआ: इस्लाम और ईसाई एवं वे धार्मिक समूह जो प्रवज्रन के द्वारा आये, जैसे यहूदी, पारसी और बहायी। उसके अलावा उन्होंने कहा कि जब हम हिन्दू ग्रन्थों को महत्व देते हैं तो पाली एवं गुरूमुखी ग्रन्थों को नज़रअन्दाज करते है, इस प्रकार हिन्दू धर्म के ग्रन्थों द्वारा हम सिर्फ वर्तमान के मुख्यधारा के लोग जैसे कि गंगा के मैदानी क्षेत्र में रहने वाले द्विज हिन्दुओं के मूल्यों को ही समझ पाते हैं।

इस तर्क में पाठ्य एवं संदर्भ का महत्व बढ़ जाता है। ऊमन ने कहा कि ग्रन्थों के ऊपर अधिक निर्भरशीलता धर्मशास्त्र एवं विधिशास्त्र की विशेषताएं हैं, जो प्रतिमान एवं मूल्यों को प्रतिस्थापित करने की ओर एक प्रयास है। इसलिए जो वर्तमान की व्यवस्था एवं व्यवहार का अध्ययन करना चाहते हैं उन्हें ग्रन्थों से हटकर क्षेत्र में जाकर क्षेत्रीय कार्य करने चाहिए। ऊमन मजबूती से अनुभव करते हैं कि समाजशास्त्रियों को बहुआयामी वास्तविकता एवं संरचना के अध्ययन के लिए संदर्भीकरण पर महत्व देना चाहिए। उनके अनुसार मूल्यों की दो श्रेणी है: (1) समाज का मूल्य जिसमें संस्तरण, पूर्णतावादी एवं बहुल्यवाद है एवं (2) संवैधानिक मूल्य जिसमें समाजवाद, धर्मनिरपेक्षवाद एवं लोकतंत्रवाद पाया जाता है। संवैधानिक मूल्य मानवीय मूल हैं जो पश्चिम से लिये गये हैं। उन्होंने कहा वृहत मानवीय दृष्टिकोण से भारतीय समाजशास्त्र को राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के लिए अहम् भूमिका निभाना चाहिए।

इस प्रकार ऊमन के लिए भारतीय समाज के संदर्भीकरण की प्रक्रिया के तीन तत्व होने चाहिए:

(1) वर्तमान की आवश्यकताएं एवं आकांक्षाओं के दृष्टिकोण से परम्परा एवं अतीत की खूबियों एवं दायित्वों को स्वीकृति प्रदान करनी चाहिए।

(2) भारतीय समाज में दूसरे समाजों एवं संस्कृतियों के उपयुक्त मूल्यों का समावेश करना चाहिए।

Scanned with CamScanner

(3) भारतीय समाज में सामाजिक रूपान्तरण धीमी गति से होता है. ऐसा मानकर धीरे–धीरे अनुकूलन की प्रवृत्ति को स्वीकृति प्रदान करनी चाहिए (ऊमन 1996)।

भारत में समाजशास्त्र

भारत में समाजशास्त्र आस्ट्रेलिया व न्यूजीलैण्ड से पुराना है (अटल 2003)। यहाँ पर बॉम्बे विश्वविद्यालय सबसे पुराना है जिसकी प्लेटिनम जयंती 1995 में मनायी गयी। भारत में समाज व संस्कृति पर शोध कार्य बहुत पुराना है लेकिन पहले अधिकतर शोधकार्य मानवशास्त्री करते थे जो ज्यादातर पश्चिम के लोग थे, जो अधिकतर ब्रिटिश थे।

भारतीयों के द्वारा शोध कार्य बहुत देर से शुरू हुआ। भारत में समाजशास्त्र एवं मानवशास्त्र के पाठ्यक्रम विश्वविद्यालयों में देर से शुरू हुए। इस प्रकार इन दोनों में तालमेल रहा। जब अध्यापन शुरू हुआ लगभग सभी भारतीय विद्वानों के द्वारा भारतीय समाज व संस्कृति के शोधकार्य शुरू हुए। भारत में प्रथम पीढ़ी के शिक्षक अधिकतर विदेशी प्रशिक्षण प्राप्त थे या अधिकतर दूसरे विषयों (Sister Discipline) से आये थे। भारत में समाजशास्त्र का पहला विभाग 1919 में बॉम्बे में स्थापित हुआ जो सर पैट्रिक गीड्स (न्यूजीलैण्ड), जो एक नगरनियोजक व भूगोलविद् थे, के प्रयासों द्वारा संभव हुआ। उन्होंने जी. एस. घुर्ये को पढ़ाने के लिए चुना जो तब संस्कृत के प्रवक्ता थे। उनको कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र पढ़ने हेतु भेजा गया। उन्होंने मानवशास्त्री डब्ल्यू. एच. आर. रीवर्स के पर्यवेक्षण में अपना पी.एच.डी. किया। दूसरे प्रवक्ता एन. ए. दूथी थे जिनको ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय भेजा गया और वहाँ उन्होंने एम. एल. मायर, जे. एल. थॉम्पसन एवं आर. आर. मेरेट से ज्ञान प्राप्त किया। ये तीनों मानवशास्त्री थे (अटल 2003)।

इन लोगों ने भारत वापस आकर समाजशास्त्र पढ़ाया विशेषकर जाति, परिवार, पद, प्रस्थिति, पुरातत्व विज्ञान आदि। इन विषयों को आज के समय में कोई भी समाजशास्त्री नहीं पढ़ाता है, ये वही पढ़ाते हैं जो मानवशास्त्री आज समाजशास्त्री बन चुके हैं। आई. पी. देसाई ने कहा कि (घुर्ये व दूथी के छात्र थे) उनके छात्रकाल में तीन तत्व पाये जाते थे:

1. पद्धतिशास्त्र को एक अलग विषय के रूप में समाजशास्त्री नहीं सिखा पाये।

2. समाजशास्त्र को विज्ञान के रूप में समझाया नहीं गया।

3. समाजशास्त्र में प्रयोगात्मक जीवन के बारे में अध्ययन होता है जो भविष्य के प्रति उन्मुख है। इस अर्थ में यह परिवर्तन के प्रति उन्मुख है।

Scanned with CamScanner

क्नैप इस स्थिति को गैर समाजशास्त्रीय नहीं मानते। लखनऊ विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र व मानवशास्त्र, अर्थशास्त्र के माध्यम से अस्तित्व मे आया। यहाँ कई महान विद्वान जैसे, राधाकमल मुखर्जी, डी. पी. मुखर्जी, डी. एन. मजूमदार आदि पढ़ाते रहे। उन लोगो ने तार्किक दर्शन व मार्क्सवाद को महत्व दिया व कुछ विद्वानों ने भारतविद्याशास्त्र के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध बनाने की कोशिश भी की। इसके बाद मानवशास्त्र एक प्रथम विभाग के रूप में डी. एन. मजूमदार की अध्यक्षता में स्थापित हुआ। समाजशास्त्र व समाजकार्य विभाग अर्थशास्त्र से 1954 में अलग हुआ।

डी. एन. मजूमदार ने कलकत्ता विश्वविद्यालय से मानवशास्त्र की पढ़ाई करके इंग्लैण्ड गये वहाँ से प्रशिक्षण प्राप्त कर वह लखनऊ विश्वविधालय के अर्थशास्त्र विभाग में आदिम अर्थशास्त्र के प्रवक्ता बने। जब एक नया समाजशास्त्र विभाग बना तब उन्हे लखनऊ विश्वविद्यालय की नौकरशाही की परेशानियों का सामना करना पडा क्योंकि यहाँ के एम.ए. के छात्रों को अर्थशास्त्र में उपाधि मिला करती थी।

लखनऊ में लोग भारतीय समाजशास्त्र की प्रकृति के बारे में विचार करते रहे व समाजशास्त्र और मानवशास्त्र के मध्य अन्तर स्पष्ट करने की कोशिश भी करते रहे। लेकिन बॉम्बे विश्वविद्यालय में ऐसा नही किया गया। वहाँ पर एम. एन. श्रीनिवास व आई. पी. देसाई दोनों घुर्ये के शिष्य थे। देसाई को समाजशास्त्री जबकि श्रीनिवास को सामाजिक मानवशास्त्री माना गया। दोनों बड़ोदा विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र विभाग में कार्यरत रहे। मानवशास्त्री व समाजशास्त्री को दो अलग जातियों के रूप में लिया जाता था। इन दोनों का सामान्य रूप से एक ही सैद्धान्तिक दृष्टिकोण पाया गया, वह है उद्‌विकारवाद का सिद्धांत।

श्रीनिवास का विदेश में पढ़ाई समाप्त करके भारत आना एक महत्वपूर्ण कदम रहा। श्रीनिवास ने सामाजिक मानवशास्त्र की पद्धतियों को अपनाकर शोध कार्य किये। देसाई ने कहा भी कि श्रीनिवास यह मानते हैं कि मानवशास्त्र ही सही व वास्तविक समाजशास्त्र है। श्रीनिवास परिमाणात्मक प्रविधि व सर्वेक्षण पद्धति को नकारते हैं एवं उसके स्थान पर गुणात्मक प्रविधि व क्षेत्रकार्य पद्धति को महत्व देते हैं। श्रीनिवास ने दिल्ली विश्वविद्यालय के Delhi School of Economics में समाजशास्त्र विभाग में शिक्षण शुरू किया और अपने तरीकों से शोधकार्य व पठन पाठन कार्य की शुरुआत की। वहाँ पर पी.एच.डी. के लिए एक साल का क्षेत्रीय कार्य अनिवार्य था। श्रीनिवास ने वहाँ मानवशास्त्र व समाजशास्त्र के एकीकरण पर बल दिया। इन दोनों विषयों के ऊपर नई चुनौतियां थी।

1. विदेशी विद्वानों के लेखों का मूल्यांकन।

2. समाजशास्त्र को भारतीय विद्याशास्त्र (Indology) एवं सामाजिक मानवशास्त्र से अलग करना।

Scanned with CamScanner

3. भारतीय समाजशास्त्र को औपचारिक रूप से विषय क्षेत्र परिभाषित करना व शोधकार्य को प्राथमिकता देना।

4. यहाँ एक रेखीय उदविकासवाद, मार्क्सवाद, संरचना–प्रकार्यवाद आदि लोकप्रिय रहा व इसको पश्चिम का एजेंडा माना गया। पद्धतिशास्त्र एक मुख्य मुददा रहा जिसमें आन्तरिक व बाह्य दृष्टिकोण के मध्य विवाद रहा। मानवशास्त्री कहते हैं कि दूसरे की संस्कृति में शोधकार्य करना चाहिए, हलांकि कई भारतीय मानवशास्त्रियों ने अपने ही समाज में शोधकार्य किये, जैसे श्रीनिवास ने कुर्ग में किया।

समाजशास्त्री वृहत समाज के अध्ययन व अध्यापन पर महत्व देते हैं जिसमें वे परिमाणात्मक विधि एवं सर्वेक्षण पद्धति को शोधकार्य का प्रमुख माध्यम मानते हैं। हलांकि मानवशास्त्रियों ने गुणात्मक विधि और क्षेत्रीय कार्य पद्धति पर व छोटे समाजों, विशेषकर जनजातीय व आदिम समाज, के अध्ययन पर जोर दिया।

कुछ लोगों ने कहा कि समाजशास्त्री समाज का व मानवशास्त्री संस्कृति का अध्ययन करते हैं। डी. पी. मुखर्जी ने कहा कि अर्थशास्त्र ने सामाजिक आधार को नजरअंदाज किया और सिर्फ एक शुष्क अमूर्तीकरण दिया। मुखर्जी ने 1955 में पहले अखिल भारतीय समाजशास्त्रीय सम्मेलन में कहा कि अन्य विज्ञानों में एक जमीन व एक छत होती है, लेकिन समाजशास्त्र की विशेषता यह है कि यहां सिर्फ भू–तल है व इसकी छत आकाश की ओर खुली है। इसका अर्थ है कि वह किसी भी तत्व का अनुकूलन कर सकता है। समाज विद्वानों को निम्न तत्वों पर गौर करना चाहिए। कुछ सामान्य बहुआयामी विचारधारा व सामान्य पद्धतिशास्त्रीय सिद्धान्त जो आधुनिक तर्क से उत्पन्न होता है। इसके अलावा कुछ दार्शनिक उपागम, अर्न्तसंबंध, उन्मुखताएं आदि भी होनी चाहिए उनके अनुसार समाजशास्त्रियों का पहला कार्य यह है कि वह परम्परा का अध्ययन करें। उसमें आन्तरिक या बाह्य दबाव से परम्परा में होने वाले परिवर्तन शामिल हैं। मुखर्जी ने कहा भारतीय समाजशास्त्र चलाने के लिए भारतीय विषय व भारतीय मूल के समाजशास्त्रियों की अनिवार्यता है। इस अनिवार्यता के अलावा इनमें भारतीय नाम की तकनीकी दक्षता भी चाहिए। उन्होंने कहा कि भारत में समाजशास्त्र का प्रशिक्षण संस्कृत भाषा में पाया जा सकता है क्योंकि सारे प्राचीन ग्रन्थ एवं साहित्य संस्कृत में लिखे गये हैं।

ए. के. सरन ने कहा कि समाजशास्त्रीय संज्ञान व विश्वदर्शन (मस्तिष्क में प्रतिदर्शित मानचिता) भारतीय परम्परा के लिए उपयुक्त नहीं है। इसीलिए अगर हम भारतीय संज्ञान व्यवस्था का स्थानीयकरण करें तो वह असफल होगा या नकल के बराबर ही साबित होगा। 1957 में जब ड्यूमों व पोकॉक ने 'Contributions to Indian Sociology' शोधपत्रिका प्रकाशित की तब कई सारे तर्क उत्पन्न हुए।

Scanned with CamScanner

ए. के. सरन पश्चिमी समाजशास्त्र के आलोचक थे। उनके अनुसार नृजातीय वर्णन विधि या एकल वर्णन (Monographic) द्वारा भारतीय समाज व्यवस्था का अध्ययन करना सम्भव नहीं है। अधिकतर पश्चिमी समाजशास्त्रियों ने भारतीय समाज को हिन्दू समाज के बराबर माना एवं उन लोगों ने भारत में स्थित बहुपरम्परा, बहुसंस्कृति को नजरअंदाज किया। कई लोग लघु व वृहत् परम्परा के मध्य अन्तर स्पष्ट नहीं कर पाये। भारतीय समाज को उसकी खोई हुई परम्परा के माध्यम से ही समझने की कोशिश की गयी।

योगेन्द्र सिंह के अनुसार भारतीय समाजशास्त्र में स्थानीयकरण के विचार में निरन्तरता पायी गयी है जिसमें समाजशास्त्रीय उपनिवेशवाद या निर्भरशीलता से कुछ रचनात्मक कार्य का रूपान्तरण हो रहा है। सामाजिक संरचना के अध्ययन में नये वृहत्त ऐतिहासिक आंकड़े, पाश्चात्य भाषा व प्रतीकात्मक तकनीकें मिली हैं। मार्क्सवादी ऐतिहासिक पद्धति के द्वारा कृषक समाज, कृषक वर्ग संरचना व श्रमिक वर्ग का विश्लेषण किया गया। नयी सैद्धांतिक उन्मुखता कई तत्वों में पायी गयी जैसे संरचनावाद, नृजातीय समाजशास्त्र, व्यवस्था का विश्लेषण, मार्क्सवाद व नव मार्क्सवाद की ऐतिहासिक भौतिकवादी पद्धति आदि। ऐसे अध्ययनों के द्वारा भारतीय समाजशास्त्र व परम्परा का नया विश्लेषण प्राप्त हुआ। इस प्रकार भारत में समाजशास्त्र के स्थानीयकरण का विश्लेषण निरन्तर पाया गया।

पाठ्य व संदर्भ (Text and Context)

इस प्रकार की विचारधारा भारत में 1950 के दशक में अध्ययन के दौरान आयी। इस विचारधारा का प्रतिपादन एम. एन. श्रीनिवास ने किया। पाठ्य (Text) का अर्थ है धर्म ग्रन्थों, पुराणों, उपनिषदों में लिखा भारतीय समाज के बारे में लेखन। सन्दर्भ (Context) उन पर आधारित समाज का विश्लेषण है जो संरचनात्मक–प्रकार्यवादी उपागम का प्रयोग करते हुए किया जा सकता है। इस प्रकार का विश्लेषण श्रीनिवास ने रेडक्लिफ ब्राउन, इवांस प्रिचर्ड व एडमण्ड लीच से प्रभावित होकर प्रस्तुत किया। इस दृष्टिकोण से, यह एक संतुलित विचारधारा है, संतुलित इसलिए क्योंकि इसमें कोई संरचनात्मक परिवर्तन शामिल नहीं है और गतिशील इसलिए क्योंकि इसके द्वारा पाठ्य व सन्दर्भ का अंतर स्पष्ट किया गया व इसने भारत में सामाजिक परिवर्तन का विश्लेषण किया।

पाठ्य व सन्दर्भ का अंतर भारतीय सामाजिक व्यवस्था की कई संस्थाओं में पाया जाता है। उदाहरण के तौर पर, वर्ण एवं जाति व्यवस्था: वर्ण व्यवस्था भारतीय सामाजिक व्यवस्था के बारे में पाठ्य विचार है। अर्थात् वर्ण व्यवस्था आज मात्र पुस्तकों में विद्यमान है, जबकि जाति व्यवस्था भारतीय समाज के बारे में सन्दर्भ विचार है। यह क्षेत्र में पाये जाते हैं अतः यह वास्तविक है। भारत में मात्र चार वर्ण पाये जाते हैं एवं यह हर क्षेत्र में समान रूप से मिलते हैं–ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र। जबकि भारत

Scanned with CamScanner

में लगभग 4000 जातियां पाई जाती हैं पर प्रत्येक जाति प्रत्येक जगह नहीं मिलती। श्रीनिवास ने कहा कि लगभग 200 मेजर जातियाँ प्रत्येक क्षेत्र में पायी जाती हैं। वर्ण व्यवस्था एक सर्वभारतीय संस्तरण (Pan Indic Hierarchy) है अर्थात जिसमें सबसे उच्च ब्राह्मण फिर क्षत्रिय फिर वैश्य व सबसे निम्न स्तर पर शूद्र आते हैं। जबकि जाति व्यवस्था में सर्वभारतीय संस्तरण नहीं होता है। यहाँ संस्तरण एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में भिन्न होता है। वर्ण व्यवस्था का आधार धार्मिक है। ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मण, भुजा से क्षत्रिय, उदर से वैश्य व पैरों से शूद्र की उत्पत्ति हुई। जबकि जाति व्यवस्था का आधार धर्म निरपेक्षता है जो आर्थिक, सामाजिक व राजनैतिक तत्कालीन स्थिति पर आधारित है। उदाहरण–शुरू में जाति वर्ण व्यवस्था में अस्पृश्य समुदायों को शामिल नहीं किया गया, अस्पृश्यता की शुरुआत उत्तर वैदिक काल में हुई। इसके बारे में दो मत हैं. (अ)– शूद्रों का विभाजन दो भागों में हुआ–सत् शूद्र, असत् शूद्र। सत् शूद्र–जो शुद्ध सेवा कार्य करते थे, असत् शूद्र–जो अशुचित कार्य करते थे तो वे अस्पृश्य होते थे। (ब)–असत् शूद्र पाचवें वर्ण के रूप में 1000 ई. पू. के पश्चात उत्तर वैदिक काल में अस्तित्व में आया। जबकि जाति व्यवस्था में अस्पृश्य समुदाय जाति व्यवस्था का अभिन्न अंग है, इनके बिना उच्च जातियों का जीवन यापन सम्भव नहीं है। वर्ण व्यवस्था अपरिवर्तनीय व जड़ है, जबकि जाति व्यवस्था परिवर्तनशील है जो संस्कृतीकरण, पश्चिमीकरण, आधुनिकीकरण, धर्मनिरपेक्षीकरण की प्रक्रियाओं के माध्यम से परिवर्तित होती है।

पाठ्य व सन्दर्भ का यह विभेद संयुक्त परिवार के बारे में भी स्पष्ट है।

संयुक्त परिवार के बारे में पाठ्य विचार

पाठ्य विचार में स्पष्ट है कि यह वृहत परिवार होता है, जिसमें कई सदस्य होते हैं। इसके मुखिया को कर्ता कहते हैं, यहाँ संयुक्त रसोई, संयुक्त पूजा, कुल देवता की पूजा, अधिकार व उत्तरदायित्वों का समान वितरण, कर्ता के पश्चात् ज्येष्ठ पुत्र कर्ता बनता है। समस्त सदस्यों के निमित्त सुरक्षा व संरक्षण, आपसी सहयोग, नारी का सम्मान आदि विशेषताएँ भी पायी गयी हैं।

सन्दर्भ विचार

संयुक्त परिवार के बारे में सन्दर्भ विचार काफी भिन्न है। यहाँ झगड़े होते हैं, नारी निम्न परिस्थिति, छोटे संयुक्त परिवार पाये जाते हैं, सम्पत्ति का समान बंटवारा हो रहा है आदि। संयुक्त परिवार के दृढ़ प्रतिमान टूट रहे हैं, आज अधिकतर नाभिकीय परिवार ही पाये जाते हैं।

Scanned with CamScanner

स्त्रियों के सम्बन्ध में पाठ्य विचार

पाठ्य विचार में नारियों को उच्च प्रस्थिति प्रदान की गयी व उनकी तुलना देवी के साथ की गयी है। "यत्र नारीत्य पूज्यते रमन्ते तत्र देवता" (जहाँ नारियों की पूजा होती है वहाँ देवता बसते हैं)। पाठ्य में नारियों के बारे में ही दूसरा मत यह भी है कि नारियां अपमान व बुराइयों की जड़ होती है, इसलिए पुरुषों को चाहिए कि ये उन्हें अपने संरक्षण में रखे।

सन्दर्भ विचार

नारियों की परिस्थिति बेहतर हो रही है, उन्हें शिक्षा, स्वास्थ्य, रोजगार के अवसर प्रदान किये जा रहे हैं लेकिन नारियों के विरुद्ध हिंसा भी बढ़ रही है और इसका कारण है नारीवादी आन्दोलनों में हो रही वृद्धि। इस सन्दर्भ में भारत में उदारवादी नारीवाद के विभिन्न पहलुओं को क्रियान्वित किया गया।

सन्दर्भीकरण व देशीय क्षेत्रों के प्रयोग

अधिकतर समाजशास्त्रीय शब्दावली, विचारधाराओं, प्रत्यय अवधारणाएँ, उपागम आदि पश्चिमी समाजों के अनुभव पर आधारित है, इसलिए ये भारतीय स्थान के लिए उपयुक्त नही है। भारतीय सामाजिक विश्लेषण हेतु अपनी स्थानीय शैलियों को उत्पन्न करना व उनका सन्दर्भीकरण करने की आवश्यकता है।

'Caste' शब्द पुर्तगाली शब्द 'Casta' से उत्पन्न हुआ एवं अंग्रेजों ने इसका प्रयोग वर्ण व जाति दोनों के लिए समान रूप से किया जिससे भ्रम उत्पन्न हुआ क्योंकि इनमें अन्तर पाया गया। श्रीनिवास ने भी स्थानीय श्रेणी के प्रयोग के रूप में वर्ग व जाति शब्दों के प्रयोग पर जोर दिया। उसी प्रकार भारत में अधिकतर समुदाय व परिवार परम्परा व नातेदारी पर आधारित तत्वों के आधार पर क्रियाशील है। इसलिए इन दोनों स्थानीय श्रेणियों को भी महत्व देने का प्रयास किया गया। योगेन्द्र सिंह के अनुसार–भारतीय समाज के लिए जिन श्रेणियों का प्रयोग किया गया उनमें पश्चिम के समाजशास्त्रियों का प्रभाव था, शुरुआत में जनजाति, जाति, राष्ट्र, वर्ग, शक्ति, मस्तिष्क, शरीर व धन जैसी विचारधाराओं के आधार पर भारतीय समाज के अध्ययन का प्रयास किया गया। लेकिन उन विश्लेषणों का कोई मजबूत पद्धतिशास्त्र नही था। पहले सामाजिक परिवर्तन को महत्व दिया गया पर कालान्तर के समाजशास्त्रीय शोधकार्य में परिवर्तन पाया गया व नयी श्रेणियां उत्पन्न हुई जैसे, समानता–असमानता, कृषक वर्ग संरचना व सामाजिक आन्दोलनों का अध्ययन। अर्थशास्त्र से प्रभावित होकर कृषक समाज व वर्ग संरचना की उत्पत्ति हुई, इतिहासविदों से प्रभावित होकर सामाजिक आन्दोलनों पर शोध शुरू हुए। इतिहास व समाजशास्त्र के परस्पर अन्तर्क्रिया से कई सैद्धान्तिक व वैचारिक विषय उत्पन्न

Scanned with CamScanner

हुए–मार्क्सवादी उन्मुखता इनमें प्रमुख है, जिसमें कृषकों से जुड़े मुद्दों का अध्ययन हुआ। नातेदारी व परिवार का अध्ययन ऐतिहासिक पठन–पाठन सामग्री, वंशावली तकनीक के आधार पर किया गया एवं पारिवारिक चक्र, उसके प्रजनन सम्बन्धों व पीढ़ियों का अध्ययन हुआ। आई. पी. देसाई ने एक नगर में परिवार चक्र का अध्ययन करते हुए परिवार की निरंतरता एवं परिवर्तन को विश्लेषित किया।

योगेन्द्र सिंह के अनुसार भारत में तीन प्रत्यय व पद्धतिशास्त्रीय उन्मुखताएं समाजशास्त्र में पायी जाती हैं। संरचनावादी, प्रारूपवादी एवं द्वन्दवादी संरचनावादी, और मुख्य रूप से इन्हीं तीनों वैचारिक–सैद्धांतिक दृष्टिकोणों के अंतर्गत जाति, धर्म, संस्कृति आदि का अध्ययन किया गया।

प्रारूपवादियों ने सम्बन्धों का अध्ययन किया। इसी प्रकार वेबरवादी वैचारिकी का प्रयोग 1950 के दशक के अध्ययनों में हुआ जो एकल वर्णन अध्ययन (Monographic) व ग्रामीण अध्ययन वर्ग संरचना के अध्ययन के साथ मिलता–जुलता रहा।

द्वन्द्वात्मक अध्ययन को मार्क्सवादियों का अध्ययन माना जाता है, हालांकि इस प्रकार का अध्ययन अभी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में है जो अधोसंरचना व अधिसंरचना, संरचनात्मक विभेदीकरण की भूमिका, एकीकरण, संस्थाकरण, समाजवादी व्यवस्था के अध्ययन व विश्लेषण पर केन्द्रित है।

योगेन्द्र सिंह के अनुसार भारतीय समाज के अध्ययन में मार्क्सवादियों व उनकी विश्लेषण प्रवृत्तियों में दो प्रकार की समस्याएं आती हैं: औपचारिकता हासिल करने की सम्भावना में कमी एवं मार्क्सवादीय पद्धतियों का प्रयोग करते हुए भारतीय समाजशास्त्र के स्थानीयकरण के दृष्टिकोण में शाब्दिक अभिव्यक्तियों की कमी। इस प्रकार भारतीय समाज का पश्चिम की शब्दावली व उन्मुखता से कुछ हद तक स्थानीयकरण करने की कोशिश की गयी।

लुई ड्यूमों व डी. एल. पोकॉक ने 1957 में भारतीय समाजशास्त्र में क्या अध्ययन क्षेत्र होने चाहिए व तथ्यों के विश्लेषण की पद्धति क्या होनी चाहिए, इस पर तर्क शुरू किया। 1957 में Contributions to Indian Sociology शोध पत्रिका शुरू की व 10 वर्ष तक लगातार सम्पादित किया व खुद ही इसमें लिखा भी। ड्यूमों ने तमिलनाडु में जाति व्यवस्था के बारे में अध्ययन किया व भारतीय विद्या उपागम के सन्दर्भ में विश्लेषण प्रस्तुत किया। जबकि पोकॉक ने गुजरात में पट्टीदार जाति का अध्ययन किया था। 1966 में उन्होंने सम्पादन छोड़ दिया व 1972 में इसकी नयी श्रृंखला प्रकाशित हुई व टी. एन. मदन इसके सम्पादक बने। इन्होंने भारत के लिए समाजशास्त्र का तर्क नये तरीकों से शुरू किया। वह इसका सम्पादन वर्ष 1997 तक करते रहे। तब वीणादास, दीपान्कर गुप्ता व पेट्रीशिया ओबेराय ने 2007 तक इसका सम्पादन किया।2007 के बाद अमिता बविस्कर व नन्दिनी सुन्दर ने सम्पादन सम्भाला।

Scanned with CamScanner

2012 से संजय श्रीवास्तव और दीपक मेहता इसका सम्पादन कर रहे हैं। इसके अलावा लखनऊ में मानवशास्त्र का महत्वपूर्ण अभियान रहा, खासकर शोध पत्रिका के दृष्टिकोण से– डी. एन. मजूमदार ने 1945 में एथनोग्राफिक एंड फोक कल्चर सोसायटी' की स्थापना की और 'द ईस्टर्न एन्थ्रोपॉलोजिस्ट' पत्रिका का सम्पादन शुरू किया, जो पिछले 67 साल से निरन्तर भारतीय समाजशास्त्र एवं मानवशास्त्र सम्बन्धित शोध लेख प्रकाशित करता आ रहा है। भारत के लिए समाजशास्त्र का मुख्य आधार उसकी विश्लेषण की पद्धतियां रही हैं। भारतीय समाज व संस्कृति के अध्ययन में पश्चिम की विचारधारा, पद्धति व श्रेणियों का प्रयोग होता रहा है। पर साथ ही कई लोगों ने समाजशास्त्र के स्थानीयकरण करने की भी कोशिश की और भारतीय समाज के अध्ययन में पश्चिम के प्रारूपों व सिद्धान्तों के प्रयोग की आलोचना की। पर कुछ प्रयत्नों के बावजूद भी मूलतः भारत में समाजशास्त्र मर्टन, पारसंस, मैलिनोवस्की के प्रकार्यवाद, रेडक्लिफ ब्राउन व अन्य समाजशास्त्रियों का संरचना–प्राकार्यवाद, मार्क्सवाद, वेबर की वैचारिकी से ही प्रभावित रहा है और अधिकांशतः इन्हीं वैचारिकी का प्रयोग करते हुए भारतीय समाज का अध्ययन किया गया।

इसके अलावा समाजशास्त्र व सामाजिक मानवशास्त्र के मध्य सम्बन्ध शहरी चर्चा का विषय रहा। अधिकतर लोग जिन्होंने इस विषय के प्रति योगदान किया वे इन दोनों विषयों के विशेषज्ञ थे अर्थात दोनों में रुचि रखते थे। कई विश्वविद्यालयों के समाजशास्त्र विभागों में मानवशास्त्र के प्रति उन्मुखता पायी गयी जैसे दिल्ली विश्वविद्यालय का समाजशास्त्र विभाग जिसके अध्यक्ष (1959–74) एम. एन. श्रीनिवास रहे, लेकिन कई विश्वविद्यालयों में ये अलग–अलग रहे इसीलिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने इन दोनों विभागों को अलग–अलग रखने का फैसला किया। उपरोक्त वर्णन एवं विश्लेषण मात्र एक विभिन्न स्रोतों से प्राप्त सूचनाओं का वर्गीकरण है। सही मायने में समाजशास्त्र का न ही आन्तरीकरण ही हो पाया है, और न ही स्थानीयकरण ही हो पाया है, इसको प्राप्त करने के लिए वाक् संयोजन (lip service) पर्याप्त नहीं है, इसके लिये सिद्धांतों के तहत शोध कार्य क्रियान्वयन करना होगा।

टिप्पणी

यह लेख ज्यादातर अटल (2003), सिंधी (1996) एवं मेरे पिछले दो दशक से एम. ए. छात्रों को पढ़ाने के अनुभव से प्रेरित है।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

अटल, योगेश, 2003, इंडियन सोशियोलॉजी: फ्राम खेयर टू खेयर, जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।

_____ 2009, सोशियोलॉजी एंड सोशल एन्थ्रोपालॉजी इन इंडिया (सम्पादित), नई

Scanned with CamScanner